IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

राजनीतिक अपराधीकरण का आर्थिक विकास पर प्रभाव

[1] डॉ0 अंजीत कुमार चौधरी

[1] सहायक प्राध्यापक,

[1] राजनीति शास्त्र विभाग,

[1] रमाबल्लभ जालान बेला महाविद्यालय, बेला, दरभंगा

सारांश : **एक समय था जब साध्य की तुलना में साधन को सर्वोपरि स्थान दिया जाता था। उस समाज में सच्चे, कर्तृतव्यपरायण, सचरित्र व्यक्तियों को धनी, बलवान और अधिकारपूर्ण की तुलना में अधिक वरीयता दी जाती थी, लेकिन आज लगता है कि वर्तमान भौतिकवादी युग में सब कुछ बदल गया है। आज किसी शीर्ष स्थान पर पहुँचना महत्वपूर्ण है, वहां किस तरह पहुंचा गया है, इसका कोई महत्व नहीं है । सब कुछ भौतिक सुख –सुविधाओं के संग्रहण पर केन्द्रित हो गया है। एक देश के विकास को आज केवल भौतिक विकास के आधार पर ही मापा जाता है। इसी कारण से धन इकट्ठा करने के लिए किसी भी . अपराधिक कार्यों का सहारा लेना आज आम बातें हो गई है। वर्तमान में हम संसार की छठी परमाणु अंतरिक्ष व हथियार निर्माता, तीसरी सैनिकों की संख्या, प्रोफेशनल व दूरसंचार, पांचवीं उपग्रह निर्माण, प्रथम हथियार आयातक व द्वितीय मानव शक्ति की श्रेणी में आ गये हैं। सूई से लेकर उपग्रह तक का निर्माण हमारे यहां होने लगा हैं। टेलीविजन, फ्रीज, रेटियो, कूलर, सोफा, स्कूटर जैसी वस्तुएं जरूरी आवश्यकताओं व टलीफोन, रंगीन टी0 वी0 सूट, शराब, सिगरेट, कोल्ड ड्रिंग्स, सिनोमा विलासिता की श्रेणी में नहीं रहीं है। उपभोक्ता संस्कृति की पहुंच गांवों तक हो गई है। सड़कों, रेलों दूरसंचार के साधनों, फैशन आदि के कारण गांव कस्बे शहरों में तेजी से परिवर्तित होते जा रहे हैं। आधुनिकतम उत्पाद, तकनीक प्रबंध व्यवस्था, पूंजी निर्माण की दर, बैंकिंग, बीमा व विदेशी व्यापार की स्थिति, कंप्यूटर विकास, विदेशी पूंजी विनियोग आदि क्षेत्रों में हमारी गिनती विकसित राष्ट्रों में होने लगी है। संसार के प्रायः हर देश में हमारे वैज्ञानिक, इंजीनियर, प्रबंधक, वित्त विशेषज्ञ व प्राध्यापक कार्यरत हैं, तथा बीसों अविकसित राष्ट्र हमारे ही सहयोग से विकास की ओर बढ़ रहे हैं।**

***Index Terms* - अपराध, घटना, राजनीतिकरण, पूंजी, भौतिक.**

नयी आर्थिक नीति ने विश्व अर्थव्यवस्था में हमें केन्द्र बिन्दु बना दिया है। अब तो बड़ी संख्या में शराबघर, जुआघर, रेस्टोरेंट, होटल, नाईट क्लब आदि सब कुछ बढ़ रहे हैं। इस संबंध में कुछ निष्कर्ष निकालने से पूर्व यह जान लेना भी अति आवश्यक है कि 10 पंचवर्षीय व तीन वार्षिक योजनाओं के बावजूद भी संसार में सर्वाधिक गरीब, निरक्षर, बेरोजगार, बाल श्रमिक, विवाहित, अवयस्क, भिखारी, वेश्याएं, बीमार, असहाय, मानसिक रोगी, तथा कोटी भारत में हैं इतना ही नहीं, दुर्भाग्य से इन सबकी संख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। ऐसी ही स्थिति बेसहारा वृद्धों, निराश नारियों की है। सुखा व बाढ़ पीड़ितों, दुर्घटनाओं में मरने वालों, असहाय रोगों से पीड़ितों, आत्महत्याओं, हत्याओं, चोरी, डकैतियों, अपहरणों, फिरौती की घटनाओं की संख्या तुलनात्मक रूप से भी बढ़ रही है। देश के लाखों गांवों के निवासी बिजली, पानी, चिकित्सा, आवास, यातायात के साधन जैसी आवश्यक सुविधाओं से वंचित है। अधिकांश स्कूल आज भी आसामान के नीचे व एक अध्यापक के सहारे चलते है। करोड़ों लोग चिकित्सा के नाम पर झाड़–फूंक, जन्तर–मंतर, ओझा, फकीर, डोरा, ताबीज, व नीम–हकीमों पर ही निर्भर करते हैं। भीतरी क्षेत्र के करोड़ों निवासियों के लिए आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था.रेल. सड़क जैसे यातायात के साधन, रेडियों व टीवी की आवाज, विद्यालय की पढ़ाई, सलीके के वस्त्र स्वप्नलोक की बातें बनी हुई है। यह यथार्थ है कि राजनीतिक अपराधीकरण या भ्रष्टाचार के कारण धन तो देश में ही रहता है पर भ्रष्टाचार के कारण अर्थव्यवस्था को निम्न क्षति होती हैं।

(क) गैर उत्पादित कर्मो में लोग प्रवृत होते हैं जिस कारण आर्थिक प्रगति की गति धीमी हो जाती है। वर्तमान आर्थिक जगत् का मूलमंत्र है– उत्पन्न करो अथवा नष्ट हो जाओ।

(ख) भ्रष्ट साधनों से अर्जित धन दिखावे, प्रदर्शन एवं उपभोक्ता कार्यों में खर्च होता है जिसकी उपयोगिता कुछ नहीं होती। इससे व्यक्ति का चरित्र नष्ट होता हैं। उसके परिवार में अनुशासनहीनता बढ़ती है, स्वेच्छाचारिता बढ़ती है तथा वह मानसिक दुश्चिंता के कारण विभिन्न बीमारियों का शिकार होकर अक्षम हो जाता है।

(ग) भ्रष्ट साधनों द्वारा लाभ देखकर मेहनतकश एवं ईमानदार व्यक्ति हताश होते हैं एवं समाज या देश में सामान्य हताशा का परिवेश उत्पन्न होता है। दूसरी ओर भ्रष्ट व्यक्ति अपने चरित्र के साथ दूसरों के चरित्र का भी हनन करते हैं।

(घ) भ्रष्टाचार की चर्चाएँ सुनकर तथा देखकर किशोर एवं युवा पीढ़ी में बिना परिश्रम किये बड़ी–बड़ी महात्वाकांक्षाएँ उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि उन्हें समाज में सभी वस्तुएँ मुफ्त में उपलब्ध संभव प्रतीत होती हैं । फलतः समाज या देश की भावी पीढ़ी पतित हो जाती है।

(ड.) भ्रष्टाचार की प्रक्रिया में विलंब अन्तर्निहित है। कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों की पूर्ति के लिए सरकारी योजनाओं एवं कार्यों में अनावश्यक मूल्य वृद्धि हो जाती है जिसका बोझ साधारण जनता पर पड़ता है।

(च) अनिर्णय, निर्णय में विलंब, कार्यालय में विलंब या कम काम करना भी भ्रष्ट आचरण है। ष्एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे देश में 6/2 घंटे में एक लिपिक लगभग 2–2/ घंटे काम करता है। यह देश के प्रति भ्रष्टाचार होता है भ्रष्टाचार एक ऐसा जीव है जिसके गर्भ से केवल अवैध संतानें उत्पन्न होती हैं एवं यह अंतहीन कुचक्र चलता ही रहता है।

आज भी करोड़ों महिलाओं को खुले में शौच व पेयजल के लिए मीलों पैदल जाना होता है, प्रसव के लिए निखट्ट, अनपढ व अप्रशिक्षित दाई की शरण में जाना होता है, आ वाले वातावरण में खाना पकाने की मजबूरी के कारण कम दृष्टि व दमा का शिकार होना पड़ता है। अधिकांश प्रतिशत महिलाएं अपने विकास के लिए बनायी योजनाओं से अनभिज्ञ है। विधवा, परित्याक्ता व अविवाहित महिलाओं की दयनीय स्थिति में आधारभूत परिवर्तन नहीं आ सका है। विकास के लिए सकारात्मक मानसिकता में परिवर्तन का जो आधारभूत तत्व है, उस दृष्टि से तो हम बहुत पिछड़े हुए हैं। विचारों की संकीर्णता, सेच की सार्थकता व क्रिया की कूपमंड्पता उसी प्रकार बनी हुई है। नारी विकास की उतनी योजनाएं बन जाने के बाद भी द्वितीय श्रेणी की नागरिकता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। पुरूष की गुलामी के प्रतीक मांग में सिंदूर, हाथों में चूड़ियाँ, पैरों में पायजेब, गले में मंगलसूत्र, करवा चौथ का व्रत जैसे प्रतीकों को अभी भी उसी प्रकार ढोना पड़ रहा है। समृद्ध व पढ़े–लिखे परिवारों में भी विधवा को मंगल कार्यों से दूर रखने, पुत्री प्राप्ति पर मायूस होने व उसके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करने, उसकी पढ़ाई को अनावश्यक मानने, कानून होने पर भी उसे सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देने, शादी के संबंध में उससे विचार–विमर्श नहीं करने, संतान नहीं होने पर उसे जली–कटी, सुनाने, पुत्र के अभाव में सामाजिक रूप से उसे उत्पीड़ित करने के संबंध में विकासवादी दृष्टि जैसा कुछ भी नजर नहीं आता है।

हमारे यहां शराब, सिगरेट, हेरोईन से लेकर चाय, चुटकी, जर्दा आदि की खपत बढ़ती जा रही है, तथा महिलाएं भी इन सबमें तेज गति से आगे बढ़ रही है। सेक्स संबंधी वर्जनाएँ समाप्त हो रही है। अश्लील फिल्मों को परविार के साथ बैठकर देखने, वी. टी. की गंदगी को सहन करने और सूचनापूर्ण कार्यक्रमों की अपेक्षा करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस विकास ने ता जल्दी सोने व उठने, बड़ों के पांव छूने, हल्का–फुल्का व्यायाम करने, प्रातःकाल समाचार–पत्र पढ़ने, शाश्वत् शक्ति याद करने, रिश्तेदारों को मिलने, भेंटने, परिवार में मिलजुल कर चर्चा करने, तथा समाज व राष्ट्र के बारे में सोच सकने की संभावनाएं ही समाप्त कर दी है। बड़े शहरों में तो प्रायः सभी कुछ औपचारिक–सा हो गया है।

विकास के कारण या उसकी चाहत में सब कुछ उल्टा–पुल्टा सा हो गया है। अब हम पीड़ितों व उपेक्षितों के बारे में कुछ करना तो दूर, बात करना ही भूलते जा रहे है। अब राजनीति के मुद्दे गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी समाप्ति, स्वदेशीकरण, कुटीर उद्योग व समानता नहीं होकर कार्यक्षमता प्रतियोगिता, आधुनिकीकरण, उदारीकरण व विदशी विनियोग विकास का मापदंड मान लिया गया है। हम साधनों को ही साध्य मान बैठे है। नहीं तो रंकपति व लखपति, गृह व स्वचालित उद्योग, ढोर गंवार व वैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित, निरक्षर व उच्च शिक्षा प्राप्त, परम्परागत व आधुनिकतम, बहुराष्ट्रीय व लघु कम्पनी में खुली प्रतियोगिता करवाने को विकास की निशानी नहीं मना जाता है।

आर्थिक विकास की चकाचौंध में नैतिक मूल्यों, स्वस्थ सामाजिक परम्पराओं व पारिवाारेक मान्यताओं का जो ह्रस हुआ है, उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा है या हम जान कर भी अनजान बन रहे हैं जबकि विकास का अंतिम लक्ष्य तो मानव का निर्माण करना ही होता है। यह निर्माण केवल भौतिक संसाधनों की प्राप्ति से ही नहीं, बल्कि सामाजिक व पारिवारिक समन्वय, सोच की श्रेष्ठता व सकारात्मकता, क्रिया की पवित्रता व कल्याण की सार्वजनिक दृष्टि से होता है। आर्थिक विकास की ललक ने हमें कितना स्वार्थी, स्वकेन्द्रित, लालची, बेईमानी, धोखेबाज व मुद्राप्रिय बना दिया है, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर पा रहे हैं । इन क्षेत्रों में हो रहे नकारात्मक विकास के कारण भौतिक विकास की सामाजिक लागत बहुत बढ़ गई है जिससे विकास का लाभ शून्य होकर रह गया है।

जिन सीमित क्षेत्रों में भौतिक वैभव बढ़ा है, उनमें सभी सुविधाएँ भले ही बढ़ गयी हो लेकिन सुख तो कम ही हुआ है। तब ही तो तलाक, तनाव, टकराव व अलग रहने, नागरिकों में आत्महत्या, अविवाहित मातृत्व, विवाहेतर संबंधों, नन्हीं बालिकाओं से बलात्कार, माता–पिता की उपेक्षा, अवैध संतानोत्पत्ति जैसी घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। अब तो पत्नी पीड़ितों के संघ, ब्रॉड माइण्ड–फ्रेंडशिप क्लब, छिपी वेश्यावृत्ति, विनियम संभोग की विकृतियां अंदर ही अंदर समाज को खोखला करे जा रही हैं। जो ज्यादा धनी है, वह उतना ही व्यसनी है। व्यसन, स्वच्छंदता, वर्जनाहीनता, आधुनिकता की निशानी भले ही मान ली जाये लेकिन विकास तो किसी भी हालत में नहीं है। भौतिक विकास मे हमें पश्चिमी पहनावा, नग्नता का प्रदर्शन, प्रकृति विरूद्ध व्यवहार, श्रेष्ठ परम्पराओं का उल्लंघन व थोथी आधुनिकता ही दी है जिसे विकास किसी रूप मे नही कहा जा सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के छरू दशकों में स्वदेशीकररण के नाम पर

ही अरबों करोड़ रूपए दो सौ से भी अधिक केन्द्रीय सार्वजनिक इकाइयों में विनियोग किया गया, बैंकों को सरकार के नियंत्रण में लिया, असामान्य ऊँची आयात दरें रखी गई। निर्यात को सरकारी सहायता के माध्यम से बढ़ाने के प्रयास हुये, फेरा जैसे सख्त विदेशी मुद्रा कानून बनाये गये, विदेशी पूंजी को देश में आने से विभिन्न नियंत्रणों व हतोत्साहनों के द्वारा रोका यगा, लघु व कुटीर उद्योगों, कृषि जैसे श्प्राथमिकताश वाले क्षेत्रों के संरक्षण के नाम पर करों से प्राप्त जनता को पसीने की कमाई को लुटाया गया। इन सबका अंतिम परिणाम क्या मिला? देश में बेरोजगारी, गरीबी व निरक्षरता की समस्या, विदेशी कर्ज, घाटे की अर्थव्यवस्था, ऋण पर आधारित खर्च, विकास के संसाधनों का दुरूपयोग लालफरीताशाही, भ्रष्टाचार, अनुत्पादक व्यय, सार्वजनकि इकाइयों का घाटा, सरकारी कर्मचारियों की अकर्मण्यता, हड़तालें, करों की संख्या व मात्रा, करापवंचन व असंकलित करों की मात्रा, सरकारी बैंकों के बट्टे खाते ऋण, सरकारी योजनाओं की विफलता, सरकारी सहायता की लूट–खसोट आदि सब कुछ तेजी से बढ़ता जा रहा है। दूसरी ओर मुद्रा की क्रय शक्ति, विदेशी मुद्रा भंडार, जान व माल की सुरक्षा देश की छवि, आम आदमी का मान–सम्मान व सुकून घटाना ही चला जा रहा है।

राजनेताओं को अब यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि देश के आर्थिक हितों पर चोट पहुंचाकर की जाने वाली राजनीति की विलासिता को भोगने को अब तैयार नहीं है। अर्थव्यवस्था को अब बीच मझधार में नहीं रोका जा सकता है। उदारीकरण की धार के विपरीत चलने की कोशिश करना भविष्य की दृष्टि से आत्मघाती कदम हो सकताहै । यह अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि अब हम, परिवर्तित अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य में जबकि संपूर्ण विश्व गांव में बदल चुका है, गांधी जी वाले ग्राम स्वावलम्बन की नीति पर नहीं चल सकते हैं।

अगर आँकड़ों की भाषा में बात की जाये तो कुल विदेशी विनियोग का करीब आधा भाग केवल पांच राज्यों (महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, दिल्ली व तमिलनाडु) में ही हुआ है। जो पहले से भी भारत के सर्वाधिक विकसित राज्य है, जहां ढांचागत सुविधाओं बिजली, तकनीक व विनियोग के लिये वातावरण का कोई अभाव नहीं है। दूसरी ओर नौ राज्य ऐसे हैं जहां एक भी डॉलर का विनियोग नहीं हुआ है, तथा दूसरे ग्यारह राज्य ऐसे हैं जहां कुल ऐसे निवेश का मात्र 0–50 प्रतिशत भाग ही आया है। आश्चर्यजनक रूप से देश के जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़े राज्य उत्तरप्रदेश में केवल 1–79 प्रतिशत, पंजाब में 0–69 प्रतिशत, तथा बिहार में 0–26 प्रतिशत निवेश हो पाया है। कुल मिलाकर यह निवेश केवल लाभ कमाने के उद्देश्य से ही किया गया है। जहां देशी निवेश की भी विपुल संभावनायें है। इसका सीधा अर्थ यह ही निकलता है कि विदेशी विनियोग ने स्वदेशी साहसियों व निवेशकर्ताओं को हतोत्साहित ही किया है। अर्थव्यवस्था या विकास दर को आगे बढ़ाने में इसका कोई सहयोग नहीं मिला है, बल्कि लाभ श व अन्य रूपों में अरबों रूपयों की राशि विदेशी मुद्रा में प्रतिवर्ष देश से बाहर जा रही है।

यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि पिछले एक दशक में भारत उच्च विकास दर वाले देशों में से एक रहा है लेकिन फिर भी गरीबी व बेरोजगारी उन्मूलन के क्षेत्र में हमारी सफलतायें अति न्यून रही हैं। इसका सबसे बड़ा व प्रभावी कारण ब्राजील व इथोपिया जैसे देशों की अर्थव्यवस्थाओं की ही तरह राष्ट्रीय आय का असमान वितरण है। वर्ष 1991 के बाद देश में इस असमान वितरण के कारण आम आदमी निराश हुआ है जो अब हताशा की ओर बढ़ रहा है । वर्ष 1993–94 में हमारा सकल घरेलु उत्पाद 9–10 लाख करोड़ रूपया का था, वह 2003–04 में बढ़ कर 24–5 लाख करोड़ रूपए का हो गया। इसके बावजूद भी देश में करीब तीन–चौथाई जनसंख्या की दैनिक आय एक सौ रूपए से अधिक नहीं है। पच्चीस प्रतिशत जनसंख्या को भरपेट खाना व तीन–चौथाई जनसंख्या को पौष्टिक खाना नहीं मिलता है जबकि विदेशी मुद्रा खर्च कर प्रतिवर्ष चालीस लाख टन खाद्य तेलों का आयात किया जा रहा है। देश में 15 करोड़ लोगों के पास तो रोजगार का कोई साधन है ही नहीं। सरकारी बैंकों के एक लाख करोड़ रूपए डूब रहे हैं। किसानों को जिस रफ्तार से क्रेडिट कार्ड बांटे जा रहे हैं, उनमें आत्महत्या का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। दुःखद स्थिति तो यह है कि अब यह रोग व्यापारियों, व्यवसायियों व लघु उद्योगपतियों में भी बढ़ता जा रहा है। सामान्य शिक्षा तो क्या इंजीनियरिंग प्रबंध व कंप्यूटर जैसे क्षेत्रों में व्यवसायिक पाठ्यक्रमों का बाजार भी समाप्त होता जा रहा है।

विकास की अच्छी गति के बावजूद आमजन में संतुष्टि के भाव उत्पन्न नहीं हाने का एक प्रमुख कारण जनंसख्या वृद्धि की दर में महत्वपूर्ण कमी नहीं आना है। अगर पिछले दस वर्षों की ही बात करें, इस अवधि में सकल घरेलू उत्पाद लगभग पन्द्रह लाख करोड़ रूपए का बढ़ा, वहीं जनसंख्या भी पन्द्रह करोड़ बढ़ गई । इस अवधि में औसत मुद्रा प्रसार दर करीब चार प्रतिशत की रही। इस प्रकार भारत में शुद्ध विकास दर भी दो प्रतिशत वार्षिक बढ़ी। इसलिये अमेरिका जापान व अधिकांश विकसित यूरोपीय राष्ट्रों को सामान्यतः हमसे आधी विकास दर के बावजूद भी आमजन में खुशहाली बढ़ रही है क्योंकि वहां जनसंख्या वृद्धि की दर शून्य के आसपास पहुंच गई है।

जनसंख्या वृद्धि की गति को नियंत्रित करने के साथ–साथ भ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर लगाम लगाकर ही देश में विकास के लाभ को महसूस किया जा सकता है। प्रायः सभी अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि जनसंख्या वृद्धि की दर को कम नहीं किया गया तो भारत वर्तमान विकास दर के हिसाब से भी गरीकों को वर्तमान संख्या में चालीस प्रतिशत तक की ही कमी ला सकता है। इस दृद्धि से तो दस वर्ष बाद भी भारत में करीब पन्द्रह करोड़ दरिद्रनारायण तो होंगे ही। अधिक भयावह स्थिति तो रोजगार सृजन दर में निरन्तर रूप से आ रही कमी से पैदा

होती लगती है। उदारीकरण की नीतियों को लागू करने से पूर्व के दस वर्षों में यह दर करीब तीन प्रतिशत थी, जो बाद के दस वर्षों में एक प्रतिशत के आसपास रह गई। इसके और अधिक गिरने की आशंका है जब देश में संविदा खेती की इजाजत दिया जाना प्रारंभ हो गया है तो कृषि क्षेत्र में मजदूरों को आफत निश्चित हो गई है, क्योंकि जो बड़ी या बहुराष्ट्रीय कंपनियां किसानों से उनके उत्पाद के क्रय के अग्रिम समझौते करेंगी, वे कृषि को आधुनिक यानी मशीनीकृत करना चाहेगी। ऐसे में इस क्षेत्र में रोजगार या मजदूरी के अवसर तेजी से गिरेंगे। जो संविदा खेती से दूर रहेंगे, वे खुले बाजा र में लागत व विक्रय मूल्य दोनों ही क्षेत्रों में प्रतियोगिता नहीं कर पायेंगे। ऐसे में गांवों, ग्रामीणों व असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की हालत कितनी दयनीय होगी, इसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता है।

सरकार ने शायद इन्ही आशंकाओं को ध्यान में रखते हुये अपने राजनीति लाभ के लिये निजी क्षेत्र में एससी, एसटी आदि के लिये आरक्षण की जो बात की है, उससे रोजगार के साधनों के अतिरिक्त सृजन या बेरोजगारी की समस्या के निदान की बात नहीं सोची जा सकती है।

भारत में ज्यादातर लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, इनमें छोटे किसानों, खेतिहर मजदूरों से लेकर लघु उद्योगों के कामगारों और दिहाड़ी मजदूरों की विशला जनसंख्या शामिल है। सरकारी कर्मचारियों समेत संगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए पेंशन और चिकित्सा जैसी अनेक सुविधाएँ है। मगर इस दायरे से बाहर जो लोग अर्थव्यवस्था में अपना योगदान देते हैं उनके लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। उन्हें बुढ़ापे में पूरी तरह अपने आश्रितों पर निर्भर रहना पड़ता है। संयुक्त परिवार का ढांचा कमजोर होने और नई पीढ़ी के सामने बेरोजगारी की समस्या के चलते उनकी आर्थिक असुरक्षा और बढ़ जाती है। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को भी सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाने की मांग समय–समय पर उठती रही है, पर अभी तक इस दिशा में कुछ भी नहीं हो पाया हैं । निश्चय ही कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के चार करोड़ अंशधारकों के हितों का ख्याल रखा जाना चाहिए लेकिन इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि इस दायरे से बाहर कामगारों के कल्याण, खासकर बुढ़ापे में उनकी असहायता कम करने के लिए क्या उपाय किए जाएँ।

असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को सामाजिक सुरक्षा का लाभ देने के उद्देश्य से विधेयक लाने की घोषणा कर प्रधानमंत्री ने सूचना के अधिकार और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के बाद यूपीए के साझा न्यूनतम कार्यक्रम के एक और अहम् वादे को पूरा करने की पहल की है। यों तो इसकी शुरूआत वर्ष 2004 में ही हो गई थी जब अर्जुन सेनगुप्त की अध्यक्षता में असंगठित क्षेत्र के उद्यमों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया था।

आयोग ने इस श्रेणी के कामगारों के मद्देनजर दो विधेयकों का मसौदा तैसयार किया। एक का उद्देश्य उन्हें सामाजिक सुरक्षा का लाभ देना और दूसरे का उनके काम और जीवनयापन की दशा में सुधार लाना है। सरकार इस मसले पर कानून बनाने से पहले उसके व्यावहारिक पहलुओं पर विचार कर रही है। योजना पर अमल करने के तंत्र और तौर–तरीकों के अलावा एक बड़ा मुद्दा वित्तीय प्रबंध का है। आयोग के अनुसार पांच हजार रुपए महीने से कम आमदनी वाले असंगठित मजदूरों के लिए राष्ट्रीय सामाजि सुरक्षा कोष बनाए जाने की योजना है। इसके लिए पच्चीस फीसदी अंशदान श्रमिकों को करना होगा। सरकारी अंशदान में तीन–चौथाई केन्द्र सरकार की जिम्मेदारी होगी और बांकी राज्य सरकारों की। करीब तीस करोड़ असंगठित मजदूरों को पेंशन और स्वास्थ्य बीमा जैसी सुविधाएँ देने के लिए लगभग बत्तीस हजार करोड़ रूपए सालाना या सकल धरूलू उत्पाद के एक फीसदी तक खर्च आ सकता है। इतनी विशाल रकम की व्यवस्था कर पाना आसान नहीं होगा। अधिकतर राज्यों को वित्तीय बदहालनी के कारण भी योजना के लिए आवश्यक धन जुटाने में मुश्किलें आ सकती है। इसलिए हो सकता हैं कि रोजगार गारंटी योजना की तरह इसे भी चरणबद्ध ढंग से लागू किया जाए । मगर समस्या सिर्फ वित्तीय प्रबंध तक सीमित नहीं है। मसलन, देश में सार्वजनिक चिकित्सा व्यवस्था का ऐसा ढांचा नहीं है जिसके बल पर असंगठित क्षेत्र के करोड़ों श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा जैसी योजना लागू की जा सके। इसी तरह उनके जीवनयापन की दशा सुधारने के लिए पहले न्यनतम मजदूरी के कानून पर अमल सुनिश्चित करना होगा, पर सबसे बड़ा तकाजा यह है कि हशिये पर जी रहे लोगों के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा हों। इसके बगैर असंगठित क्षेत्र को सामाजिक सुरक्षा मुहैया कराने का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता । और यह सब तभी संभव होगा जब राजनीतिज्ञ अपने चरित्रों को बेदाग कर पायेंगे।

राज्यों की बिगड़ती वित्तीय स्थिति .

उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, और राजस्थान के साथ–साथ पंजाब सरीखे विकसित राज्य के वित्तीय संकट में फंसने के आसार यही बताते हैं कि राज्य सरकारें अपनी अर्थव्यवस्था के संचालन में आर्थिक नियमों की उपेक्षा कर रही है। राजस्व में कमी और खर्च में लगातार वृद्धि के कारण देश के अनेक राज्यों का वित्तीय संतुलन गड़बड़ाना राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए शुभ संकेत नहीं है। राज्यों पर बकाया कर्ज की स्थिति का आंकलन करने के लिए बनाई गई रिजर्व बैंक की विशेषज्ञ समिति ने अपनी जो रपट पेश की है, वह चिंतित करने वाली है। इस रपट में कुल मिलाकर राज्यों की ऋणग्रस्तता की भयावह तस्वीर ही उभर रही है। यद्यपि वित्त मंत्रालय इस रपट से चिंतित नजर आ रहा है, लेकिन इसमें संदेह है कि वह राज्य सरकारों को आर्थिक नियमों अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकेगा। जो भी हो, चूंकि

राज्य सरकारें आसान्न वित्तीय संकट को लेकर गंभीर नहीं हैं अतः केन्द्र सरकार को कोई न कोई कदम उठाने ही होंगे। यह इसलिए और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि कई राज्यों का वित्तीय ढांचा चरमराने की स्थिति में पहुंच गया है। हालत यह है कि बैंक एवं वित्तीय संस्थान कर्ज के बोझ से दबे राज्यों को ऋण देने से इंकार कर सकते हैं। यदि ऐसी स्थिति बनी तो राज्यों को कर्ज से उबारने की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार के कंधों पर आ पड़ेगी। केन्द्र के लिए इस जिम्मेदारी को वहन करना एक टेढ़ी खीर साबित होगी, क्योंकि स्वयं उसकी वित्तीय स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। यह चिंताजनक है कि जो अनेक राज्य करीब–करीब ऋण जाल में फंस चुके हैं, वे अपनी ऐसी स्थिति के प्रति गंभीर नजर नहीं आते हैं। यह तब है जब इन राज्यों का ऋण उनके सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में 50 प्रतिशत से अधिक हो गया है। यह तो खतरे की घंटी है, लेकिन इससे अधिक खतरनाक यह है कि खतरे की इस घंटी को सुनने से इनकार किया जा रहा है। यह विडंबना ही है ऐसा करने वालों में अपेक्षाकृत समृद्ध माना जाने वाला राज्य पंजाब भी है। राज्यों की खस्ताहाल वित्तीय स्थिति का मूल कारण उनकी नारेबाजी प्रधान आर्थिक नीतियां ही है। ज्यादातर राज्य सरकारें आम आदमी को लुभाने अर्थात् चुनावी लाभ के लिए वोट बैंक को मजबूत करने के लोभ से ऐसी योजनाओं पर खुलकर पैसा खर्च करती हैं जो आमतौर पर अनुत्पादक ही सिद्ध होती है। एक अन्य समस्या यह भी है कि राज्य सरकारें आर्थिक नीतियों का निर्माण तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखकर करती हैं। शायद ही कोई ऐसा राज्य हो जो अपनी नीतियों का निर्माण

दीर्घकालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर गंभीरता से करता हो। हमारे देश में राज्यों के स्तर पर आर्थिक नीतियों में निरंतरता का अभाव एक स्थाई समस्या का रूप ले चुका है। सत्ता परिवर्तन होते ही पिछली सरकार की आर्थिक नीतियों को हाशिए पर डाल देना राज्य सरकरों की प्रवृति बन गई है। एक अन्य घातक प्रवृति राजस्व की अनदेखी कर मुफ्तखोरी की संसकृति को बढ़ावा देना भी है। यदि राज्य सरकारों ने वित्तीय अनुशासनहीनता का प्रदर्शन जारी रखा तो वे ऐसे संकट से घिर सकती हैं कि उससे उबरना मुश्किल हो जायेगा । अतः देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने से पहले राजनेताओं को अपने चरित्र को साफ करना होगा और अपनों के बीच अपनी स्वच्छ चरित्र का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा। राजनीति से अपराधिक तत्वो को हटाये बिना देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता हैं। राजनीतिज्ञों द्वारा आर्थिक घोटालों की गूंज भी देश में गाहे–बगाहे होती ही रही। बड़े बड़े आर्थिक अपराधियों की रखा करने का आरोप गुजरे दिनों में देश के शीर्ष राजनीतिज्ञों पर लगता रहा। इस सिलसिले में कई शीर्ष राजनीतिज्ञ भारी छीछलेदार की स्थिति में भी पड़ गए। लगभग 55 अरब रूपये के प्रतिभूति घोटाले से जुड़े कुख्यात आर्थिक अपराधी बंबई के शेयर दलाल हर्षद मेहता ने 16 जून 1993 को सीधे प्रधानमंत्री पीवी नरसिंहा राव पर आरोप लगा दिया कि प्रधानमंत्री राव को उसने एक करोड़ की राशि उस समय दी थी जब राव प्रधानमंत्री बनने के बाद नंदयाल का संसदीय उपचुनाव लड़ रहे थे। हर्षद का अरोप था कि 4 नवंबर 1991 को उसने प्रधानमंत्री को 67 लाख तथा 5 नवंबर 1991 को 33 लाख रूपये दिल्ली स्थिति प्रधानमंत्री निवास–7] रेसकोर्स रोड पर जाकर दिया था। जाहिर है हर्षद मेहता के इस बयान से पूरे देश में सनसनी मच गई थी। 16 जून 1993 को हर्षद मेहता ने बंबई में कहा कि मैंने यह राशि प्रधानमंत्री से राजनीतिक संरक्षण और आशीर्वाद पाने के लिए प्रधानमंत्री को दी थी। मेहता ने आरोप के बाद विवाद गहराने पर कहा कि–श्प्रधानमंत्री राव को श्राजनीतिक चंदाश देने की बात को सार्वजनिक करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, लेकिन जब मुझे जान पर खतरा महसूस हुआ तो मुझे विवश को हलफनामा देना पड़ा । क्योंकि मुझे लगा कि मेरे साथ वही होनेवाला है जैसा नागरवाला या धरम तेजा के साथ कभी हुआ था। उनलोगों की तरह न तो मैं मरना चाहता हूं न ही यह चाहता हूं कि मुझे हमेशा के लिए खामोश कर दिया जाए।ष उल्लेखनीय है कि श्रीमती गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल के शुरूआती दिनों में घोटाला का आरोप नागरवाला पर था। बैंक से भारी रकम श्रीमती गांधी के नाम पर नागरवाल ने ले लिया था। बाद में रहस्यमय परिस्थिति में नागरवाला की हत्या हो गयी थी।

भारतीय राजनीति में यह पहला मौका थ जब परोक्ष रूप से भी नहीं, बल्कि प्रधानमंत्री . पर सीधे इस तरह का किसी ने आरोप लगाया था। हर्षद मेहता के इस आरोप में चाहे जो भी दम रहा हो लेकिन जाहिर था, खुद प्रधानमंत्री राव भी सकते में आ गए थे। कुछ राजनीतिक विश्लेषक इसे कांग्रेस के अंदरूनी कलह का परिणाम बता रहे थे। राव मंत्रिमंडल के कांग्रेसी दिग्गज अर्जुन सिंह और राव के केंद्रीय मंत्रिमंडल से महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पद पर भेजे गए शरद पवार के बारे में राजनीतिक गलियारों में अटकलें गर्म थीं कि हर्षद मेहता के ऐसे आरोप के भी यही दोनों नेता सूत्रधार हैं। बहरहाल, कांग्रेस में यह प्रवृति नयी नहीं थी। हमेशा से कांग्रेसी ही कांग्रेसी के दुश्मन रहे है। श्रीमती गांधी के जमाने में जबकि किसी की चलती बनती नहीं थी फिर भी कुछ कांग्रेसी नेता उस जमाने में भी चालबाजी करने से बाज नहीं आते थे। प्रधानमंत्री पर हर्षद मेहता के आरोपों को लेकर कई महत्वपूर्ण राजनीतिक खिलाड़ी भाजपा की भूमिका भी सूंघ रहे थे। बहरहाल, जो भी हो पर यह बात हर्षद प्रकरण से तो स्पष्ट थी ही कि देश के बड़े–बड़े आर्थिक अपराधी भी कैसे देश के राजनीतिक शतरंज पर महत्वपूर्ण मोहरे बनते रहे हैं। वैसे बड़े–बड़े व्यवसायियों से राजनीतिक गतिविधियों के लिये भारत ही क्या विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों में राजनीतिक दल वाले मोटी राशियां लेते रहे हैं। कांग्रेस में केके शाह, एसके पाटिल , रजनी पटेल, ललितनारायण मिश्र और सीताराम केसरी जैसे दिग्गज बड़े व्यवसायियों से पार्टी खाते के लिए धन वसूली का काम करते रहे थे। यह बहुत खुली बात थी। इस तरह राजनीतिक दलों

ने आर्थिक अपराधियों का सदैव भरपूर पृष्ठपोषण किया क्योंकि उनके व्यावसायिक गोरखधंधों का हिस्सा बाकायदे राजनीतिज्ञों को मिलता रहा। जून 1993 में जब भारतीय प्रधानमंत्री राव, हर्षद मेहता के आरोपों का सामना कर रहे थेय ठीक उन्हीं दिनों में ब्रिटिन के प्रधानमंत्री जॉन मेजर भी ऐसे ही एक आरोप से उलझे थे। दरअसल, श्संडे टाइम्सश ने एक महत्वपूर्ण समाचार प्रकाशित कर प्रधानमंत्री जॉन मेजर की सत्तारूढ़ कंजरवेटिव पार्टी पर आरोप लगाया था कि उनकी पार्टी ने एक कुख्यात फरार व्यवसायी आसिल नादिर से 4 लाख 40 हजार पौंड चंदे के रूप में लिया। भ्रष्टाचार के ही आरोप में बंग्लादेश के पूर्व राष्ट्र पति एचएम इरशाद को सात वर्षों के लिए सश्रम कारावास की सजा दी गयी। जापान के प्रधानमंत्री मियाजावा को भ्रष्टाचार के आरोप में गद्दी छोड़नी पड़ी थी। ब्राजील के राष्टपति कोलर को भी भ्रष्टाचार के आरोप में ही पद से जाना पड़ा था। पर इसके बावजूद भ्रष्टाचार को तमाम जनाक्रोश के बाद भी जारी रखने के लिये अपराधी तत्वों का सहारा लेना राजनीतिज्ञों ने कभी नहीं छोड़ा। इसी तरह भ्रष्टाचार और उसकी रक्षा के लिए अपराध, सत्ता का स्थायी चरित्र बन गया।

निष्कर्षः

कुल मिलाकर देखें तो भारत में लोकतांत्रिक–संवैधानिक मूल्यों के निरंतर ह्रास से भारतीय राजनीति अपराधग्रस्त होती चली गयी। सत्तालोलुपता, सत्ता की मदांधता, सत्ता बचाने के लिए जातीयता, सांप्रदायिकता और क्षेत्रीयता के राजनीतिज्ञों के घिनौनें नुस्खें ने समाज को भी अस्थिर कर दिया । इस तरह सामाजिक–राजनीतिक अस्थिरता ने अंततः अपराधी तत्वों की समाज से लेकर सत्ता तक में हैसियत बढ़ा दी। इस संदर्भ में प्रमुख चिंतक नेता रघुकुल तिलक की एक टिप्पणी उल्लेखनीय है–श्भारत की जनता अपने स्वाभाव और मनोवृत्ति के कारण लोकतंत्र को सफल बनाने की क्षमता नहीं रखती। यहां की धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएं लोगों को भाग्यवादी और सहनशील होना सिखाती हैं, और इसलिये वे निरंकुश शासन के अत्याचार को सहज ही सहन कर लेते हैं, और सत्ताधारियों का विरोध या आलोचना करना पसंद नहीं करते। इसके अतिरिक्त यहां का समाज जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर इतने छोटे–छोटे टुकड़े में बंटा हुआ है कि कोई भी निरंकुश तंत्र इस फूट से लाभ उठाकर सहज ही अपना आधिपत्य जमा सकता है।ष

आज यह सवाल सबकों परेशान कर रहा है कि समाज और राजनीति से अपराधी तत्वों को बाहर कैसे किया जाए? पर समर्थ राजनीतिक चिंतकों का मानना है कि यह पहल जबतक आम जनता की तरफ से नहीं होगी तबतक राजनीति से अपराधी तत्वों का उन्मूलन असंभव है। जनशक्ति अंततः निर्णायक है। संवैधानिक मर्यादा, लोकतांत्रिक मूल्यों की फिर से बहाली एक समर्थ जनशक्ति ही कर सकती है। समाज ओर समाज के आमजन अगर दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ तय कर लें कि उन्हें हिस्ट्रीशीटर राजनीतिज्ञ नहीं चाहिए तो हिस्ट्रीशीटर और अपराधी सरगना स्वाभाविक रूप से जेल से लेकर अदालत के कठघरे के बीच ही सीमित रहेंगे, संसद और विधानसभाओं को सुशोभित नहीं करेंगे। मुख्य मुद्दा अंततः यह है कि राजनीति और सत्ता मूलक समाज चाहिए या समाज मूलक राजनीतिक और सत्ता चाहिए? आज राजनीति के अपराधीकरण के इस चरम दौर में देश के जन–जन को यह तय करना ही होगा।

संदर्भ स्रोत :

- कोनोलो, ईव विलियम रू पॉलिटिक्स एंड ऐम्बीगुइटी, दि युनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस, 1967 पृ0–65–68
- कार्डोजो, बी0 : दि नेयर ऑफ ज्येडीशियल प्रासेस, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, हेवेन, 1921 पृ0–46–50
- कॉक्स, आर्चीबाल्ड रू दि रोल ऑफ सुप्रीम कोर्ट इन अमेरिका गवर्नमेंट क्लेरेन्डॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1976 पृ0 –48–52
- दास, बी, सी. रू इंडियन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1976 पृ0 –36–38
- दास, बी, सी. रू पॉलिटिक्स डेवलपमेन्ट इन इंडिया य आशीष पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली , 1978 पृ0 –72–75
- दास, डॉ० एच० एन0 : पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ इंडिया, अनमोल पब्लिकेशन (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 1998 पृ0 –80–85